न्याय-वैशेषिक दर्शन में अभाव को भी भाव की तरह एक पदार्थ माना गया है। वास्तव में, न्याय-वैशेषिक दर्शन एक सामान्य बुद्धि वस्तुवाद (common-sense realism) है। अतः यह अनुभव की उपेक्षा नहीं कर सकता है। अनुभव हमें जिस प्रकार "भाव" पदार्थ का होता है उसी प्रकार "अभाव" पदार्थ का भी होता है। जिस प्रकार "अमुक वस्तु विद्यमान है", की हमें ~~अनुभूति~~ अनुभूति होती है उसी प्रकार "अमुक वस्तु विद्यमान नहीं है", की भी हमें अनुभूति होती है। उदाहरणार्थ किसी स्थान पर घड़ा के विद्यमान रहने पर हमें यह अनुभव होता है कि "यहाँ घड़ा है", और घड़ा के नहीं रहने पर हमें यह अनुभव होता है कि "यहाँ घड़ा नहीं है।"

पुनः अभाव तथा भाव दोनों परस्पर संबंधित हैं इसलिये एक की अभिव्यक्ति दूसरे के द्वारा की जा सकती है। एक ही विचार को भावात्मक तथा निषेधात्मक दोनों ही प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है फलस्वरूप दोनों एक दूसरे के तुल्य (Equivalent) हैं। निम्न वाक्यों द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है कि जिस विचार को भावात्मक रूप से व्यक्त किया जाता है उसे अभावात्मक रूप से भी व्यक्त किया जा सकता है। फिर इसके विपरीत भी जिस विचार को अभावात्मक रूप से व्यक्त किया जाता है उसे भावात्मक रूप से भी व्यक्त किया जा सकता है :—

1. (क) "घटः अस्ति।" अर्थात् घड़ा है (या घड़ा का भाव है)।
   (ख) "घटाभाव न अस्ति।" अर्थात् घड़ा का अभाव नहीं है।
2. (क) "घटः न अस्ति।" अर्थात् घड़ा नहीं है (या घड़ा का भाव नहीं है)।
   (ख) "घटाभावः अस्ति।" अर्थात् घड़ा का अभाव है।

उपर्युक्त प्रथम दो वाक्य एक दूसरे के तुल्य हैं तथा द्वितीय दो वाक्य एक दूसरे के तुल्य हैं। अतः भाव तथा अभाव की समान व्यापकता (denotation) या क्षेत्र है।

अभाव का शाब्दिक अर्थ नहीं होना है। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिये कि अभाव का अर्थ शून्य है। वास्तव में अभाव का अर्थ शून्य नहीं है बल्कि किसी वस्तु का किसी दिक्-काल में विद्यमान नहीं होना है। इसे स्पष्ट करते हुए Hiriyanna कहते हैं कि "By abhāva, however, we should understand only the negation of something somewhere and not absolute nothing (śūnya) which the Nyāya-Vaiśeṣika dismisses as unthinkable or a pseudo-idea".

अभाव का ज्ञान भाव-ज्ञान सापेक्ष है। अतः बिना भाव पदार्थ ज्ञान हुए उसके अभाव का ज्ञान नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ बिना पहले से घट ज्ञान हुए घटाभाव (घड़े के अभाव) का ज्ञान संभव नहीं है। पाश्चात्य दार्शनिक Bradley (ब्रेडले) ने भी बताया है कि Every negation has a positive ground (प्रत्येक निषेध का भावात्मक आधार होता है।

यद्यपि अभाव का ज्ञान भाव-ज्ञान सापेक्ष है किन्तु भाव का ज्ञान स्वयं अपने पर निर्भर करता है। जैसे घट ज्ञान घट की ~~सत्ता~~ पर निर्भर करता है।

भाव-ज्ञान पर निर्भर करना अभाव का विशेष लक्षण है। इसे ध्यान में रखकर अभाव की निम्न परिभाषा दी गयी है —

"प्रतियोगिता ज्ञानाधीन विषयत्वम् ~~[illegible]~~ "अभावत्वम्"

अर्थात् अभाव वह है जिसका ज्ञान प्रतियोगी ज्ञान पर आश्रित है। ~~जिस वस्तु का अभाव होता है उसे प्रतियोगी कहा जाता है। अतः जिसका~~ अभाव होता है वह प्रतियोगी है — "यस्याभावः सः प्रतियोगी।" घटाभाव में घट प्रतियोगी है। घटाभाव का विरोधी ~~[illegible]~~ घट है। इस प्रकार अभाव का विरोधी या विपरीत भाव है। अतः प्रतियोगी का अर्थ विरोधी ग्रहण करना चाहिये।

अभाव किसी वस्तु का ही नहीं बल्कि, किसी वस्तु में भी होता है। कहने का ~~[illegible]~~ तात्पर्य यह है कि अभाव का आधार या अधिष्ठान भी होता है जैसे — भूतले घटः नास्ति" अर्थात् जमीन पर घड़ा नहीं है। अभाव के आधार या अधिष्ठान को अनुयोगी कहा जाता है। अतः जमीन (भूतल) अनुयोगी है। इस प्रकार, जिसमें अभाव है उसे अनुयोगी कहते हैं — "यस्मिन अभावः सः अनुयोगी।

अभाव की तरह संयोग तथा समवाय संबंध भी सापेक्ष है। जिन्हें संयोग संयुक्त करता है और जिनमें समवाय समवेत रहता है, उन सम्बन्धियों (related terms) के ज्ञान के बिना संयोग तथा समवाय संबंध का ज्ञान नहीं हो सकता है। किन्तु जिन संबंधियों (related terms) के ज्ञान पर संयोग तथा समवाय का ज्ञान निर्भर करता है वे ऐसे भाव पदार्थ हैं जो उपस्थित रहते हैं और अभाव का ज्ञान जिस भाव पदार्थ के ज्ञान पर निर्भर करता है वह अनुपस्थित रहता है। अतः भाव पदार्थ अभाव का निरूपक (determinant) ही नहीं, बल्कि प्रतियोगी (opposite or counterpart) भी होता है।

अभाव के प्रकार :— यद्यपि विभिन्न प्रकार के अभाव का उल्लेख किया जाता है किन्तु अभाव के निम्न चार प्रकार मुख्य हैं :—
(1) प्रागभाव, (2) प्रध्वंसाभाव, (3) अत्यन्ताभाव तथा (4) अन्योन्याभाव।

(1) प्रागभाव (Prior non-existence) — उत्पत्ति के पूर्व कार्य का अभाव प्रागभाव है — "उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य।" दूसरे शब्दों में उत्पत्ति से पहले कार्य का जो अभाव कारण में रहता है उसे प्रागभाव कहते हैं। उदाहरणार्थ घड़ा की उत्पत्ति के पूर्व उसके उपादान कारण मिट्टी में जो अभाव है उसे प्रागभाव कहते हैं। प्रागभाव में हमें ऐसा प्रतीत होता है कि घट उत्पन्न होगा — "घटो भविष्यति।" किन्तु घटोत्पत्ति के बाद घटाभाव (घट के अभाव) का अन्त हो जाता है। इस प्रकार उत्पन्न वस्तु से अभाव का नाश हो जाता है इसलिये प्रागभाव को प्रध्वंसक भी कहा जाता है — "विनाश्यभावत्वं प्रागभावत्वम्।" प्रागभाव अनादि तथा सान्त है — "अनादिः सान्तः प्रागभावः।" यह अभाव कब से चला आ रहा है, नहीं कहा जा सकता है। अतः प्रागभाव का आरम्भ या आदि का पता नहीं होने से यह अनादि है। किन्तु कार्य की उत्पत्ति हो जाने पर इसका अन्त हो जाता है इसलिये इसे सान्त (स + अन्त) कहा जाता है।

(2) प्रध्वंसाभाव (Posterior non-existence) — कार्य के विनाश के बाद जो अभाव होता है वह प्रध्वंसाभाव है — "विनाशान्तरं कार्यस्य।" दूसरे शब्दों में किसी कार्य की उत्पत्ति के बाद जब उसका विनाश होने से जो अभाव होता है उसे प्रध्वंसाभाव कहा जाता है। उदाहरणार्थ उत्पन्न घड़ा के नष्ट हो जाने के बाद जो अभाव होता है उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं। प्रध्वंसाभाव सादि तथा अनन्त है — "सादिरनन्तः प्रध्वंसाभावः।" उपर्युक्त उदाहरण में घड़ा के विनाश के बाद इस अभाव का प्रारम्भ होता है इसलिये इसे सादि (स + आदि) कहा जाता है। किन्तु इस अभाव का अन्त नहीं हो सकता है क्योंकि जो घड़ा नष्ट हो गया, वह कभी फिर से उत्पन्न नहीं हो सकता है, अतः यह अनन्त है।

(3) अत्यन्ताभाव (Absolute non-existence) — त्रैकालिक अभाव को अत्यन्ताभाव कहते हैं। भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीन कालों में जब कोई अभाव रहे तो वह अत्यन्ताभाव है। अतः तीन कालों में संसर्ग के अभाव को अत्यन्ताभाव कहते हैं — त्रैकालिकसंसर्गाभावः अत्यन्ताभावः।" उदाहरणार्थ वायु में रूप का अभाव त्रैकालिक है

क्योंकि वायु में न तो रूप (पहले था), न अभी है और न भविष्य में ही होगा। प्रागभाव तथा प्रध्वंसाभाव से सर्वथा भिन्न अत्यन्ताभाव है। प्रागभाव का अन्त है तथा प्रध्वंसाभाव का आदि (प्रारम्भ) है किन्तु अत्यन्ताभाव का न तो आदि है और न अन्त। यह अभाव ~~सदा बना~~ ~~रहता है इसलिये~~ यह कब से प्रारम्भ हुआ, यह नहीं कहा जा सकता है अतः यह अनादि है। पुनः इस अभाव का अन्त भी कभी नहीं होगा इसलिये यह अनन्त है। इस प्रकार अत्यन्ताभाव अनादि तथा अनन्त है —
"अनादिरनन्तः अत्यन्ताभावः।"

(5) अन्योन्याभाव (Reciprocal non-existence) – तादात्म्य के निषेध को अन्योन्याभाव कहते हैं — "तादात्म्यनिषेधः अन्योन्याभावः।" तादात्म्य के अभाव बताने के कारण इसे तादात्म्याभाव भी कहते हैं। जब एक वस्तु का दूसरी वस्तु से तादात्म्य नहीं है तब इसका अर्थ हुआ कि दोनों एक दूसरे से भिन्न या अलग हैं। फलस्वरूप अन्योन्याभाव परस्पर का अभाव है। उदाहरणार्थ घड़ा कपड़ा नहीं है — "घटः पटः न अस्ति।" घड़ा और कपड़ा एक ही चीज नहीं है अर्थात् दोनों में तादात्म्य नहीं है। घड़ा का तादात्म्य घड़ा से तथा कपड़ा का तादात्म्य कपड़ा से है। अतः घड़ा कपड़ा से अन्य है और कपड़ा भी घड़ा से अन्य है। इस प्रकार दोनों में पारस्परिक भेद या अन्तर है। यह भेद कभी समाप्त होनेवाला नहीं है इसलिये यह अभाव नित्य है।

कुछ विद्वानों ने अन्योन्याभाव को अत्यन्ताभाव में समाहित करने का प्रयास किया है और बताया है कि दोनों का एक ही स्वरूप है। उदाहरणार्थ — घड़ा कपड़ा नहीं है। इसका अर्थ है कि — (i) घड़ा में कपड़ा नहीं है (ii) कपड़ा में घड़ा नहीं है। लेकिन यदि हम ध्यान से देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि दोनों में पर्याप्त अन्तर है। अन्योन्याभाव में भेद (difference) बताते हैं और फलस्वरूप तादात्म्य के अभाव को बताते हैं। किन्तु अत्यन्ताभाव में संसर्ग (contact) के अभाव को बताते हैं।

उपर्युक्त बताये गये अभाव के चार प्रकार को दो वर्गों में ही रखा जा सकता है — (1) तादात्म्याभाव (2) संसर्गाभाव। तादात्म्याभाव एक ही प्रकार का होता है लेकिन संसर्गाभाव तीन प्रकार का होता है — प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव तथा अत्यन्ताभाव। प्रागभाव में कार्य के उत्पन्न नहीं होने से संसर्ग का अभाव रहता है, जैसे सूतों से कपड़ा नहीं बनने से सूतों में कपड़ा का संसर्ग नहीं रहता है। प्रध्वंसाभाव में कार्य के नाश हो जाने से संसर्ग का अभाव रहता है, जैसे कपड़े का नष्ट हो जाने से सूतों से संसर्ग नहीं रहता है। अत्यन्ताभाव में तीनों काल में संसर्ग का अभाव रहता है, जैसे कपड़ा में घड़ा का तीनों काल में अभाव रहता है।

तादात्म्याभाव तथा संसर्गाभाव में अन्तर यह है कि तादात्म्याभाव तादात्म्य (identity) का निषेध करता है तो संसर्गाभाव संसर्ग अर्थात् संबंध (relation) का निषेध करता है।

अभाव का ज्ञान कैसे होता है ? How it is cogn

भट्ट मीमांसक तथा अद्वैत वेदान्ती मानते हैं कि अभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा नहीं हो सकता है क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये इन्द्रिय और वस्तु का संयोग या सन्निकर्ष आवश्यक है किन्तु किसी वस्तु का अभाव का अर्थ ही है कि अमुक वस्तु की अनुपस्थिति। अतः जब वस्तु उपस्थित ही नहीं है तो उससे इन्द्रियों का सन्निकर्ष कैसे हो सकता है ? फलस्वरूप भट्ट मीमांसकों तथा अद्वैत वेदान्तियों ने अभाव के ज्ञान के लिये एक स्वतंत्र प्रमाण के रूप में अनुपलब्धि को स्वीकार किया है।

किन्तु नैयायिकों के अनुसार अभाव का ज्ञान भी प्रत्यक्ष से ही होता है। इस संदर्भ में उन लोगों ने व्याख्या के लिये एक अन्य प्रकार का सन्निकर्ष को स्वीकार किया है जिसे उन्होंने विशेषण-विशेष्य भाव की संज्ञा दी है। इस सन्निकर्ष के अनुसार जब हम कहते हैं कि भूतल पर घट का अभाव है तब भूतल विशेष्य तथा घटाभाव उसका विशेषण है। इस प्रकार घटाभाव विशेषण से विशिष्ट भूतल है उससे हमारा इन्द्रिय सन्निकर्ष होता है जिसे विशेषण विशेष्य भाव कहा जाता है और इसीके द्वारा भूतल पर घट के अभाव का ज्ञान होता है।

यह स्पष्ट है कि घटाभाव तथा भूतल के बीच संयोग तथा समवाय सम्बन्ध नहीं हो सकता है क्योंकि ये संबंध दो भाव पदार्थों के बीच पाये जाते हैं। अतः नैयायिक इनके बीच एक विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध — स्वरूप संबंध मानते हैं।